☐ **श्री रामवल्लभ सोमानी**, जयपुर
[प्रसिद्ध इतिहास अन्वेषक]

वीर भूमि मेवाड़ में धर्म के बीज संस्कार रूप में जन्म-जात ही है। भले ही वहां का राजधर्म 'भागवतधर्म' रहा हो, किन्तु जैनधर्म के बीज भी उस भूमि में अत्यंत प्राचीन है। प्रस्तुत में प्रमाणों के आधार पर मेवाड़ में जैन धर्म के प्राचीनतम अस्तित्व का वर्णन है।

मेवाड़ में जैनधर्म की प्राचीनता

☐

मेवाड़ से जैनधर्म का सम्बन्ध बड़ा प्राचीन रहा है। बड़ली के वीर सं० ८४ के लेख में, जिसकी तिथि के सम्बन्ध में अभी मतैक्य नहीं है, मध्यमिका नगरी का उल्लेख है। अगर यह लेख वीर संवत का ही है तो मेवाड़ में भगवान महावीर के जीवनकाल में ही जैन धर्म के अस्तित्व का पता चलता है। मौर्य राजा सम्प्रति द्वारा भी नागदा व कुम्भलगढ़ के पास जैन मन्दिर बनाने की जनश्रुति प्रचलित है। भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा में हुए देवगुप्त सूरि का सम्बन्ध मेवाड़ क्षेत्र से ही था। जैन धर्म का यहाँ व्यापक प्रचार ५वीं-छठीं शताब्दी में हुआ। उस समय राजस्थान में सांस्कृतिक गतिविधियों में विशेष चेतना आई। धीरे-धीरे जालोर, भीनमाल, मंडोर, पाली, चित्तौड़, नागौर, नागदा आदि शिक्षा और व्यापार के प्रमुख केन्द्रों के रूप में विकसित होने लगे। सिद्धसेन दिवाकर मेवाड़ में चित्तौड़ क्षेत्र में दीर्घ काल तक रहे थे। इनकी तिथि के सम्बन्ध में विवाद है। जिनविजयजी ने इन्हें ५३३ ई० के आसपास हुआ माना है। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों में न्यायावतार प्रमुख है। यह संस्कृत में पद्यबद्ध है और तर्कशास्त्र का यह प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें की गई तर्कशास्त्र सम्बन्धी कई व्याख्यायें आज भी अखंडित है। इन्हें जैन तर्कशास्त्र का आदिपुरुष कहा गया है। इनके अन्य ग्रन्थों में कल्याणमन्दिर स्तोत्र और द्वात्रिंशिकाएं प्रमुख है। हरिभद्रसूरि भी चित्तौड़ से सम्बन्धित है। ये बहुश्रुत विद्वान थे। इनकी तिथि में भी विवाद रहा है। मुनि जिनविजयजी ने सारी सामग्री को दृष्टिगत रखते हुये इन्हें विक्रम की आठवीं शताब्दी में माना जो ठीक प्रतीत होता है। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों में समराइच्च कहा और धूर्ताख्यान कथा साहित्य के रूप में बड़े प्रसिद्ध हैं। दर्शन और योग के क्षेत्र में भी इनकी देन अद्वितीय है। इनमें षड्-दर्शन समुच्चय, शास्त्रवार्ता समुच्चय, अनेकान्त जयपताका, धर्म-संग्रहिणी, योग शतक, योगविंशिका-योग दृष्टि समुच्चय आदि मुख्य हैं। इनकी कृतियों में अस्पष्टता नहीं है। ये अपने समय के बड़े प्रसिद्ध विद्वान रहे हैं। उस समय चित्तौड़ पर मौर्य शासकों का अधिकार था और पश्चिमी मेवाड़ में गुहिल वंशी शासकों का।

बौद्ध इतिहासकार तारानाथ के अनुसार शीलादित्य राज के समय मरुक्षेत्र में मूंगधर द्वारा में कला की पश्चिमी शैली का विकास हुआ। शीलादित्य राजा कौन था। इस सम्बन्ध में मतभेद रहते हैं, कार्ल खांडलवाल इसे हर्ष शीलादित्य (६०६-६४७ ई०) से अर्थ मानते हैं, जबकि यू. पी. शाह मैत्रक राजा शीलादित्य मानते हैं किन्तु इन दोनों शासकों का मेवाड़ और मरुप्रदेश पर अधिकार नहीं था। अतएव यह मेवाड़ का राजा शीलादित्य था। इसके समय में वि. सं. ७०३ के शिलालेख के अनुसार जैनक महत्तर ने जावर में अरण्यवासिनी देवी का मन्दिर बनाया था। कल्याणपुर सामला जी, ऋषभदेवजी, नागदा आदि क्षेत्र पर उस समय निश्चित रूप से गुहिलों का अधिकार था। अतएव कला का अद्भुत विकास उस समय यहाँ हुआ।

चित्तौड़ और मेवाड़ का दक्षिणी भारत से भी निकट सम्बन्ध रहा था। कई दिगम्बर विद्वान उस समय चित्तौड़ में कन्नड़ क्षेत्र से आते रहते थे। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार से पता चलता है कि प्रसिद्ध दिगम्बर विद्वान ऐलाचार्य यहाँ दुर्ग पर रहते थे। इनके पास शिक्षा प्राप्त करने के लिये वीरसेनाचार्य आये थे और यहाँ से बड़ौदा जाकर धवला टीका पूर्ण की थी। षट्खंगम की कुल ६ टीकायें हुई थीं, इनमें धवला अन्तिम है। इसमें लगभग ७२,००० श्लोक हैं। वीर सेनाचार्य ने 'कषाय प्राभृत' की 'जय धवला टीका' भी प्रारम्भ की थी। जिसे ये पूर्ण नहीं कर पाये और इनके बाद

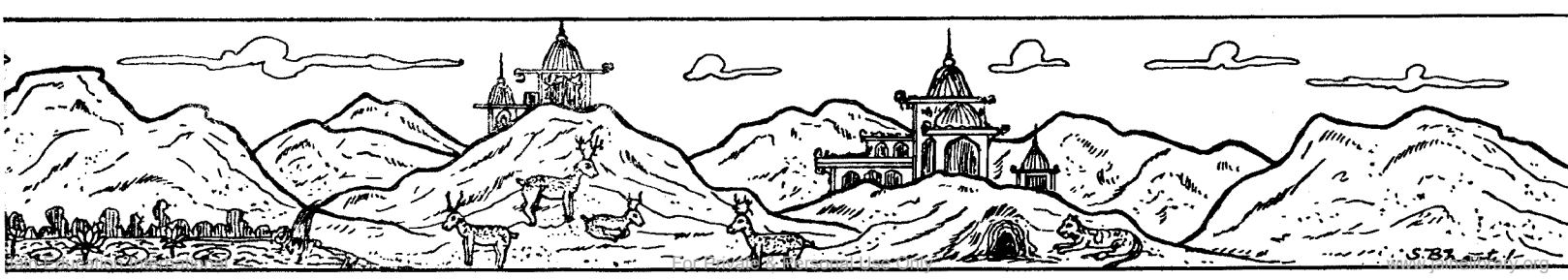

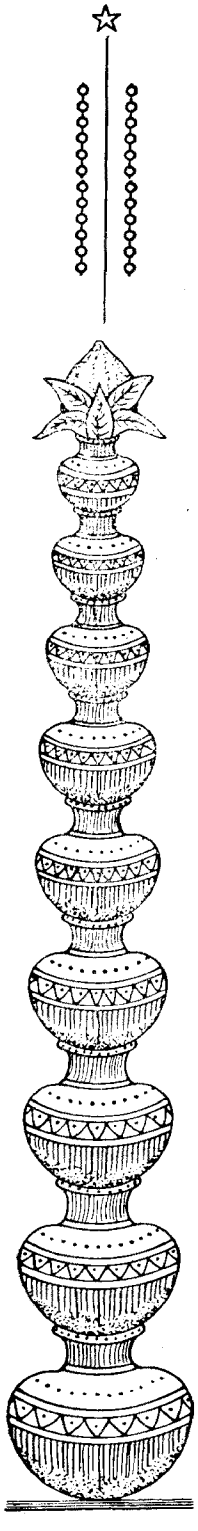

इनके शिष्य जिनसेनाचार्य ने पूर्ण की थी। दिगम्बर ग्रन्थों में चित्तौड़ का कई बार उल्लेख आया है। 'पउम चरिअं' में तीन बार उल्लेख हुआ है। दक्षिण भारत में भी कई शिलालेख मिले हैं जिनमें चित्रकूटान्वय साधुओं का उल्लेख है। ये सूरस्थगण के थे। जैन की त्रिस्तम्भ चित्तौड़ से सम्बन्धित एक खंडित प्रशस्ति हाल ही में मैंने 'अनेकान्त' में प्रकाशित की है। इसमें श्रेष्ठि जीजा के पुत्र पूर्णसिंह द्वारा उक्त कीर्ति स्तम्भ की प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। इस लेख में जैन साधु विशाल कीर्ति, शुभ कीर्ति, धर्मचन्द्र आदि का उल्लेख है जिन्हें दक्षिण भारत के राजा नारसिंह का सन्मान प्राप्त था। अतएव पता चलता है कि ये साधु भी दक्षिणी भारत से सम्बन्धित थे।

कन्नड़ का एक अप्रकाशित शिलालेख भी हाल ही में मुझे चित्तौड़ के एक जैन मन्दिर में लगा हुआ मिला था जिसे मैंने श्रद्धेय भुजबली शास्त्रीजी से पढ़वाया था। यह लेख उनके मत से १५वीं शताब्दी का है। केवल जिनेश्वर की स्तुति है। महाकवि हरिषेण ने अपने ग्रन्थ 'धम्मपरिक्खा' में महाकवि "पुष्पदंत चतुर्मुख और स्वयं भू को स्मरण किया है, अतएव पता चलता है कि इन कवियों की कृतियों को यहाँ बड़े आदर से पढ़ा जाता था। इसी समय मेवाड़ में महाकवि डड्ढा के पुत्र श्रीपाल हुये। इनका लिखा प्राकृत ग्रन्थ 'पंथ संग्रह' बड़ा प्रसिद्ध है।

मेवाड़ में ऋषभदेवजी का मन्दिर बड़ा प्रसिद्ध और प्राचीन है। इसे दिगम्बर, श्वेताम्बर और वैष्णव सब ही बड़ी श्रद्धा से मानते हैं। इस मन्दिर में शिलालेख अधिक प्राचीन नहीं मिले हैं। मण्डप में लगे शिलालेखों में एक वि०स० १४३१ का है। इसमें काष्ट संघ के भट्टारक धर्मकीर्ति के उपदेश से शाह बीजा के बेटे हरदान द्वारा जिनालय के जीर्णोद्धार का उल्लेख है। अलाउद्दीन खिलजी गुजरात के आक्रमण के समय इसी मार्ग से गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने इस मन्दिर को खंडित कर दिया हो जिसे कालान्तर में महाराणा खेता के समय में जीर्णोद्धार कराया था। इसी मण्डप में एक अन्य लेख वि०सं० १५७२ का है जिसमें भी काष्टा संघ के भट्टारक यशकीर्ति के समय काछल गोत्र के श्रेष्ठि कडिया पोइया आदि द्वारा कुछ जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख है। वि०स० १५७२ में ही महादेव कुलिकाओं के मध्य स्थित ऋषभनाथ का मन्दिर काष्टा संघ के नन्दि तट गच्छ के विद्यागण के भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति के समय बघेरवाल श्रेष्ठि संघी आल्हा ने बनाया था। इसी आगे की देव कुलिकायें वि०सं० १५७४ में उक्त सुरेन्द्र कीर्ति के समय हुबँडजाति के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के उपदेश से बनाई थीं। मूर्तियों में अधिकांश पर लेख हैं जो विसं० १६११ से १८६३ तक के हैं। लेख वाली मूर्तियों में ३८ दिगम्बर सम्प्रदाय की और १८ श्वेताम्बरों की है। महाराणा जवानसिंह के एक बहुत बड़ा महोत्सव हुआ जिसमें श्वेताम्बरों ने वहाँ विशाल ध्वज दण्ड लगाया था, मन्दिर मराठों की लूट से भी प्रभावित हुआ था।

नागदा मेवाड़ में प्राचीन नगर है। यहाँ आलोक पार्श्वनाथ का दिगम्बर जैनमन्दिर १०वीं शताब्दी का है। यह मन्दिर ऊँची पहाड़ी पर बना है। इसके आस-पास पहले दिगम्बरों की बस्ती थी। 'मुनिसुन्दर की गुर्वावली' से पता चलता है कि इस तीर्थ को समुद्रसूरि नामक श्वेताम्बर साधु ने दिगम्बरों से लिया था। शीलविजय और मेघ ने अपने तीर्थमालाओं में इस तीर्थ की बड़ी प्रशंसा लिखी है। यहाँ के पार्श्वनाथ मन्दिर का प्राचीनतम उल्लेख वि०सं० १२२६ के बिजोलिया के शिलालेख में है। इस पार्श्वनाथ मन्दिर में वि०सं०१३५६ और १३५७ के शिलालेख भी लगे हुए हैं जो दिगम्बर साधुओं के हैं। मध्यकालीन मन्दिरों में विसं० १३३१ के आसपास बना देव कुलिकाओं सहित श्वेताम्बर मन्दिर जिसमें वि०सं० १४८७ का महाराणा मोकल के राज्यकाल का एक अप्रकाशित शिलालेख भी लगा हुआ है। इसी मन्दिर के पास महाराणा कुंभा के राज्यकाल में बना अद्भुत का मन्दिर है। यह मन्दिर अद्भुत जी की विशाल काय ९ फीट की पद्मासन काले पत्थर की प्रतिमा के लिए बहुत ही प्रसिद्ध है। यह प्रतिमा श्रेष्ठी सारंग ने बनवाई थी जो देलवाड़ा का रहने वाला था। यहाँ और भी कई खंडित मन्दिर हैं। एकलिंग मन्दिर के वि०सं० १०२८ के लकुलीश शिव मन्दिर के लेख में वर्णित है कि उस समय एक शास्त्रार्थ शैवों-बौद्धों और जैनों के मध्य हुआ था। सौभाग्य से इस घटना का उल्लेख काष्ट-संघ की लाट बागड़ की गुर्वावली में भी है जिसमें वर्णित किया गया है कि राजा नरवाहन के राज्य में चित्तौड़ में प्रभाचन्द नामक साधु ने विकट शैवों को हराया था। ये प्रभाचन्द नामक साधु कहां के थे, पता नहीं चला है, किन्तु एकलिंग जी के पास नागदा होने से वहाँ से भी सम्बन्धित होने की कल्पना की जा सकती है।

मध्यकालीन प्राचीन नगरों में देलवाड़ा (मेवाड़) बड़ा प्रसिद्ध है। इसे जैन ग्रन्थों में देवकुलपाटक लिखा गया है। यह बड़ा समृद्ध नगर था और नागदा के खंडित होने पर अधिकांश लेख या तो आहड़ चले गये या यहाँ आ बसे। इसकी समृद्धि का वर्णन सौम सौभाग्य काव्य, गुरु गुण रत्नाकर आदि मध्यकालीन काव्यों में है। प्रसिद्ध आचार्य सोम सुन्दर सूरि यहाँ कई वार पधारे थे। सबसे पहले वि०सं० १४५० में आये थे। उस समय राणा लाषा के मन्त्री रामदेव

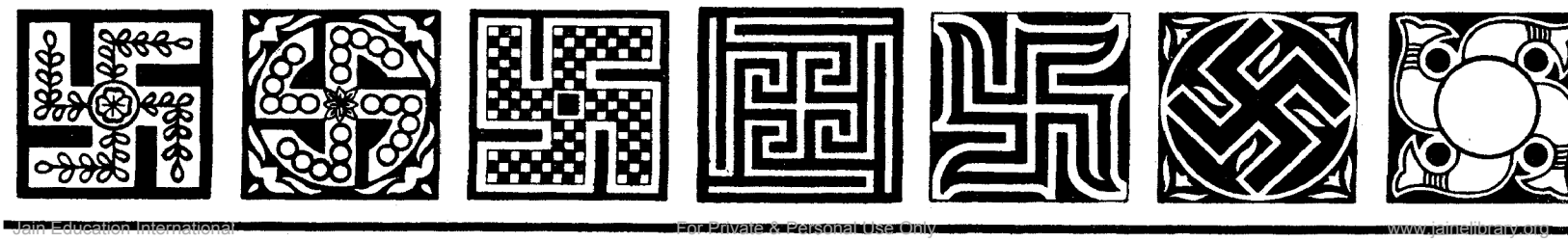

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और राजकुमार चूंडा ने इनका स्वागत किया था। इसके बाद श्रेष्ठि नीम्बा द्वारा प्रार्थना करने पर आचार्य सोम सुन्दर सूरि यहाँ आये थे। उस समय दीक्षा महोत्सव किया एवं भुवनसुन्दर को वाचक की उपाधि दी गई। यहाँ सहणपाल नामक श्रेष्ठि बहुत ही प्रसिद्ध हुआ है। यह महाराणा मोकल और कुँभा के समय तक मंत्री था। इसकी माता मेलादेवी बड़ी प्रसिद्ध श्राविका थी जिसने कई ग्रन्थ लिखाये थे। ये खरतरगच्छ के श्रावक थे। इस परिवार का सबसे प्राचीनतम उल्लेख वि.सं. १४३१ का करेड़ा जैन मन्दिर का विज्ञप्ति लेख है। इस लेख के अनुसार बहाँ बड़ा प्रतिष्ठा महोत्सव किया गया था। उक्त विज्ञप्ति की प्रतिलिपि वि०सं० १४६६ में मेरुनन्दन उपाध्याय द्वारा लिखी हुई मिली है। इसी मेरुनन्दन उपाध्याय की मूर्ति १४६६ में मेलादेवी ने बनवाई थी जिसकी प्रतिष्ठा जिनवर्द्धन सूरि से कराई थी। जिन वर्द्धन सूरि की प्रतिमा वि०सं० १४७६ में उक्त परिवार ने दोलवाद्य में स्थापित कराई थी जिसकी प्रतिष्ठा जिनचन्द्र सूरि से कराई थी। वि०सं० १४८६ में संदेह देलवाड़ा नामक ग्रन्थ भी इस परिवार ने लिखवाया था। वि०सं० १४६१ में आवश्यक वृद्ध वृत्ति ग्रन्थ लिखवाया था। वि०सं० १४६१ के देलवाड़ा के यति जी के लेख के अनुसार धर्मचिन्तमणि पूजा के निमित्त १४ टके दाम देने का उल्लेख है। सहणपाल की बहिन खीमाई का विवाह श्रेष्ठि वीसल के साथ हुआ था। यह ईदर का रहने वाला था। सोम सौभाग्य काव्य और गुरु गुण रत्नाकर काव्यों में इसके सुसराल पक्ष का विस्तार से उल्लेख मिलता है। वीसल का पिता वत्सराज था जो ईदर के राजा रणमल का मन्त्री था। इसके ४ पुत्र थे (१) गोविन्द, (२) वीसल, (३) अक्रूरसिंह और (४) हीरा। गोविन्द ने सोमसुन्दर सूरि आचार्य के निदेशन में संघ निकाला था। वीसल स्थायी रूप से महाराजा लाखा के कहने पर मेवाड़ में ही रहने लग गया था। यहाँ का पिछोलिया परिवार बड़ा प्रसिद्ध था। इनके वि०सं० १४६३ और १५०३ के शिलालेख मिले हैं। पं० लक्ष्मणसिंह भी यहीं हुए थे। यहाँ कई ग्रन्थ लिखे गये थे। प्रसिद्ध "सुपासनाह चरियं" वि०सं० १४८० में महाराणा मोकल के राज्य में यही पूर्ण हुआ था जिसमें पश्चिमी चित्र शैली के कई उत्कृष्ट चित्र है।

करहेडा मेवाड़ के प्राचीन जैन तीर्थों में से हैं। यहाँ की एक मूर्ति पर वि०सं० १०३६ का का शिलालेख है जिसमें सडेर गच्छ के यशोभद्र सूरि के शिष्ठ श्यामाचार्य का उल्लेख है। यशोभद्र का उल्लेख वि०सं० ६६६ के एक संदर्भ में पाली नगर में हुआ है। करेड़ा के कई मूर्तियों के लेख मिले हैं जो १३वीं से १४वीं शताब्दी के हैं। इस विशाल-काय मन्दिर की बड़ी मान्यता मध्यकालीन साहित्य में रही है। श्रेष्ठि रामदेव नवलखाने वि०सं० १४३१ में खरतरगच्छ के आचार्य जिनोदय सूरि से कराया था। इस समय दीक्षा महोत्सव भी कराया गया। इसमें कई अन्य परिवार की लड़कियां और लड़कों को दीक्षा दी गई। मन्दिर का जीर्णोद्धार रामदेव मन्त्री द्वारा कराया गया। और प्रतिष्ठा महो-त्सव भी उसी समय कराया गया। इसी समय लिखा विज्ञप्ति लेख में इसका विस्तार से उल्लेख है। इसी मन्दिर में वि० सं० १५०६ में महाराणा कुँभा के शासनकाल में भी कई मूर्तियां स्थापित कराई गईं।

उदयपुर नगर में संभवतः कुछ मन्दिर इस नगर की स्थापना के पूर्व के रहे होंगे। आहड़ एक सुसम्पन्न नगर था। यहां के जैन मन्दिरों में लगे लेखों से पता चलता है कि ये मन्दिर संभवतः प्रारम्भ में १०वीं शताब्दी के आसपास बने होंगे। महाराणा सांगा और रतनसिंह के समय यहां के जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ। आहड के दिगम्बर जैन मन्दिर के शिलालेख और भीलवाडे के एक मन्दिर में रखी के लेख के अनुसार उस समय बड़ा प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। महाराणा जगतसिंह के समय उदयपुर नगर में कई जैन मन्दिर बने। महाराणा राजसिंह के समय बड़े बाजार का दिगम्बर जैन मन्दिर बना। चौगान का सुप्रसिद्ध मन्दिर महाराणा अरिसिंह के समय बना था। मेवाड़ में जैन श्वेताम्बर श्रेष्ठि दीर्घकाल से शासन तन्त्र में सक्रिय भाग लेते आ रहे थे। अतएव उनके प्रभाव से कई मन्दिर बनाये जाते रहे हैं।

सबसे उल्लेखनीय घटना मन्दिर की पूजा के विरोध के रूप में प्रकट बाईस सम्प्रदाय है। मेवाड़ में इसका उल्लेखनीय प्रचार भामाशाह के परिवार द्वारा कराया गया था। इसका इतना अधिक प्रभाव हुआ है कि केन्द्रीय मेवाड़ में आज मन्दिर मानने वाले अल्प मात्रा में रह गये। इसी सम्प्रदाय से पृथक होकर आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ की स्थापना मेवाड़ में राजनगर नामक स्थान से की थी। वर्तमान में इन दोनों सम्प्रदायों का यहां बड़ा प्रभाव है।

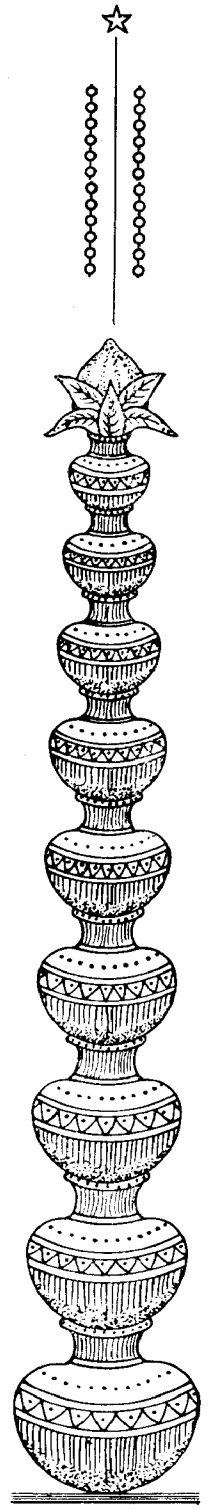

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org